Toppersnotes®
Unleash the topper in you

SET

State Eligibility Test

राज्य पात्रता परीक्षा

राजनीति विज्ञान

पेपर – 2 || भाग – 2

भारतीय राजनीतिक विचारक और तुलनात्मक राजनीतिक विश्लेषण

SIERRA INNOVATIONS

Unit -3

राजनीतिक सिद्धांत

1.	धर्मशास्त्र	1
2.	कौटिल्य	5
3.	अगाना सुत्त	17
4.	जियाउद्दीन बरनी	24
5.	कबीर	35
6.	पंडित रमाबाई	40
7.	बाल गंगाधर तिलक	45
8.	स्वामी विवेकानन्द	57
9.	रवीन्द्रनाथ टैगोर	65
10.	महात्मा गाँधी	80
11.	अरबिन्द घोष	115
12.	ई.वी. रामास्वामी पेरियार	126
13.	मानवेन्द्रनाथ राय	133
14.	विनायक दामोदर सावरकर	148
15.	डॉ. भीमराव अम्बेडकर	155
16.	जवाहरलाल नेहरू	166
17.	राम मनोहर लोहिया	185
18.	जय प्रकाश नारायण	195
19.	दीनदयाल उपाध्याय	206

Unit -4

तुलनात्मक राजनीतिक विश्लेषण

1.	राजनीतिक संस्कृति	213
2.	राष्ट्रवाद	217
3.	राज्य सिद्धांत	219

4.	राजनीतिक शासन प्रणालियाँ	223
5.	संविधान तथा संविधानवाद	224
6.	लोकतंत्रीकरण : लोकतांत्रिक तथा समेकत	226
7.	विकास	227
8.	शक्ति की संररचनाएँ	230
9.	कर्त्ता और प्रक्रियाएँ	231

भारतीय राजनीतिक विचारक

(INDIAN POLITICAL THINKERS)

धर्मशास्त्र

(DHARAMSHASTRA)

धर्मशास्त्र एक संस्कृत भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है "पवित्र कानून या उचित आचरण का विज्ञान"। धर्मशास्त्र संस्कृत ग्रन्थों का एक वर्ग है, जो कि महाशास्त्र जिसमें सभी वेदों, धर्मसूत्र, निबन्ध, वृत्ति और स्मृतियां सम्मिलित हैं। यह वह शास्त्र है जो हिन्दू धर्म का ज्ञान सम्मिलित किये हुए हैं। धर्मशास्त्र के अन्तर्गत धर्म शब्द में पारंपरिक अर्थ में धर्म तथा साथ ही कानूनी कर्तव्य भी सम्मिलित हैं। विधिशास्त्र की प्राचीन भारतीय व्यवस्था, जो आज भी भारत के बाहर रहने वाले हिन्दुओं के लिए परिवार कानून का आधार है और प्रचलन में है। इसमें कानूनी संशोधन हो सकते हैं। धर्मशास्त्र का सीधा सम्बन्ध राज्य के वैधानिक प्रशासन से नहीं, बल्कि प्रत्येक दुविधापूर्ण स्थिति में मानव आचरण के उचित मार्ग से है। फिर भी.खासकर बाद के विवरणों में अदालतों और उनकी कार्यवाहियों पर विचार किया गया है। पारंपरिक वातावरण में पले-बढ़े अधिकांश हिन्दू, धर्मशास्त्र के कुछ मूलभूत सिद्धान्तों से परिचित हैं। इनमें यह मान्यता भी शामिल है कि कर्त्तव्य सदैव अधिकार से बड़ा है। इसके साथ-साथ ये कर्त्तव्य जाति विशेष में एक व्यक्ति के जन्म के अनुसार अलग-अलग होते हैं और महिलाएं अपने सबसे नजदीकी पुरुष के संरक्षण में रहती हैं तथा राजा को अपनी प्रजा की रक्षा करनी चाहिए। धर्मशास्त्र वह ग्रन्थ हैं, जिसमें मानव और समाज के विधान के निमित्त नीति और सदाचार सम्बन्धी नियम दिये गये हैं।

धर्मशास्त्र का इतिहास (हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र) भारतरत्न पांडुरंग वामन काणे द्वारा रचित हिन्दू धर्मशास्त्र से सम्बन्ध एक इतिहास ग्रन्थ है। जिसके लिये उन्हें सन् 1956 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। यह पांच खण्डों में विभाजित

एक बृहत ग्रन्थ है। 1963 में डॉ. पांडुरंग वामन काणे को भारत सरकार द्वारा सर्वोच्च नागरिक सम्मान भारतरत्न से सम्मानित किया गया। धर्मशास्त्र का इतिहास का अन्तिम भाग (पंचम खण्ड) का लेखन 1965 में पूरा हुआ। भारतरत्न पांडुरंग डॉ. वामन काणे ने इन परम्पराओं का विश्वकोशीय अध्ययन तैयार किया। पांच भागों में प्रकाशित बड़े आकार के 6500 पृष्ठों का यह ग्रन्थ भारतीय धर्मशास्त्र का विश्वकोश है। इसमें ईस्वी पूर्व 600 से लेकर 1800 ई. तक की भारत की विभिन्न धार्मिक प्रवृत्तियों का प्रामाणिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

धर्मशास्त्र वह महाशास्त्र है जो हिन्दुओं के धर्म का सम्पूर्ण ज्ञान सम्मिलित किये हुए है और धर्म शब्द में धर्म के साथ ही जहां आचरण के कानूनी कर्तव्य भी सम्मिलित हैं। धर्मशास्त्रों का बृहद पाठ भारत की ब्राह्मण परम्परा का अंग है, तथा यह भारत की विद्वत्परम्परा की देन एवं एक विशद तन्त्र है। इसके गहन न्यायशास्त्रीय विवेचन के कारण प्रारम्भिक ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासकों द्वारा यह हिन्दुओं के लिए कानून के रूप में माना गया था तब से लेकर आज भी धर्मशास्त्र को हिन्दू विधिसंहिता के रूप में देखा और जाना जाता है। धर्मशास्त्रों को निम्नलिखित तीन मुख्य श्रेणियों में बांटा जा सकता है–आचार कर्तव्य/अधिकार व्यवहार और प्रायश्चित।

श्रुतियां ही मुख्य धर्मग्रन्थ मानी गई हैं और वे अन्य सभी धर्मग्रन्थों से श्रेष्ठ मानी जाती हैं। श्रुति का शाब्दिक अर्थ होता है–सुना हुआ। कुछ लोग श्रुति को गुरु-शिष्य परम्परा से जोड़कर देखते हैं क्योंकि शिष्य गुरू के सम्मुख बैठकर सीधे सुनता और संवाद करता है। वेद प्रमुख रूप से श्रुतियों में गिने जाते हैं। कुछ लोग भागवत गीता को भी श्रुति ही मानते हैं।

स्मृति हिन्दू धर्म के उन धर्मग्रन्थों का समूह है जिनकी मान्यता श्रुति से नीची श्रेणी की हैं और जो मानवों द्वारा उत्पन्न थे। इनमें वेद नहीं आते। हिन्दू धर्मशास्त्र 'स्मृति' के नाम से भी प्रसिद्ध हैं, जिनमें सर्वाधिक विख्यात 'मनुस्मृति' है। स्मृति का शाब्दिक अर्थ है–'याद किया हुआ'। स्मृतियां एक बहुत लम्बे समयान्तराल में संकलित की गई हैं और भिन्न-भिन्न विषयों से सम्बन्धित हैं। स्मृतियों की रचना वेदों की रचना के

बाद लगभग 500 ईसा पूर्व हुई। यद्यपि स्मृति को वेदों से नीचे का दर्जा हासिल है लेकिन वे (रामायण, महाभारत, गीता, पुराण) अधिकांश हिन्दुओं द्वारा पढ़ी जाती हैं, क्योंकि वेदों को समझना बहुत कठिन है और स्मृतियों में आसान कहानियां और नैतिक उपदेश हैं। इसकी सीमा में विभिन्न धार्मिक ग्रन्थों–गीता, महाभारत, विष्णुसहस्रानाम की भी गणना की जाने लगी। शंकराचार्य ने इन सभी ग्रन्थों को स्मृति ही माना है।

धर्मसूत्रों में वर्णाश्रम-धर्म, व्यक्तिगत आचरण, राजा एवं प्रजा के कर्तव्य आदि का विधान है। ये गृह्यसूत्रों की श्रृंखला के रूप में ही उपलब्ध होते हैं। श्रौतसूत्रों के समान ही, माना जाता है कि प्रत्येक शाखा के धर्मसूत्र भी पृथक्-पृथक् थे। वर्तमान समय में सभी शाखाओं के धर्मसूत्र उपलब्ध नहीं होते।

भारतीय दर्शन और धर्म के मुख्य ग्रन्थ वेद हैं। वेद शब्द का अर्थ है–ज्ञान/जाननाय। यह 'विद्' धातु से बना है, जिसका वास्तविक अर्थ है–जानना/जानने वाला (ज्ञाता)। धर्मशास्त्रों में मनुष्य के कर्तव्यों को बताया गया है। अधिकांश धर्मशास्त्र वेदों की देन हैं। उपनिषद् वेदों के अत्यन्त दार्शनिक भाग हैं। चूंकि ये वेदों के अन्तिम भाग हैं इसीलिए इन्हें वेदों का सार भी कहा जा सकता है। उपनिषद = उप + नि + षद जिसका अर्थ है पास बैठना। उपनिषदों को वेदान्त भी कहते हैं, जिसका अर्थ है वेदों का अन्तिम भाग।

निवन्ध और वृत्ति विधि-सलाहकारों के लिए बनाए गए न्याय से सम्बन्धित कार्य हैं और विभिन्न सूत्रों तथा स्मृतियों के बीच सामंजस्य की दक्षता को प्रदर्शित करते हैं। ऐसे निबन्धों में सबसे प्रसिद्ध 'मिताक्षरा' है, जिसे चालुक्य सम्राट विक्रमादित्य षष्ठ के दरबार में विघ्नेश्वर ने संकलित किया था।

पश्चिमी देशों के लोगों को सबसे पहले 18वीं शताब्दी में प्राच्यविद् और न्यायविद् सर विलियम जोन्स ने धर्मशास्त्र से परिचित कराया था। उनका अनुसरण करने वाले बहुत से लोगों, जैसे सर हैनरी मैनेका मानना था कि धर्मशास्त्र एक तरीके से पुरोहितों के द्वारा रचित थी, जिसका उद्देश्य जाति व्यवस्था के अन्तर्गत निचली जाति के लोगों को उच्च जाति के लोगों के नियन्त्रण में रखना था। जर्मनी और इटली के विद्वानों ने

विशेषतः जी. बुहलर, जूलियस जॉली और गइसेप्पे मज्जारेल्ला ने धर्मशास्त्र के अध्ययन के वाद, इसके मनोवैज्ञानिक और सामाजिक महत्व पर जोर दिया था।

कौटिल्य

(KAUTILYA)

प्राचीन भारत के राजशास्त्रियों में कौटिल्य का स्थान सबसे ऊंचा है और उसे शासन, कला तथा कूटनीति का सबसे महान् प्रतिपादक माना जाता है। कौटिल्य का अर्थशास्त्र राजनीतिशास्त्र का ऐसा महत्वपूर्ण ग्रन्थ है जिसका मुख्य प्रतिपाद्य विषय राजनीति है। सलेटोरे के अनुसार, "प्राचीन भारत की राजनीतिक विचारधाराओं में सबसे अधिक ध्यान देने योग्य कौटिल्य की विचारधारा है।" सलेटोरे ने चार कारणों से इस ग्रन्थ को महत्वपूर्ण माना है–प्रथम, इस ग्रन्थ में पूर्वगामी सभी ग्रन्थों का सार दिया हुआ है। कौटिल्य का उद्देश्य पूर्णतया यथार्थवादी था और अर्थशास्त्र की रचना इहलोक तथा परलोक की प्राप्ति के मार्गदर्शन हेतु की गयी। दूसरा, यह ग्रन्थ यथार्थवादी है तथा उन समस्याओं पर विचार करता है जिनका सामना मनुष्य को इसी लोक में करना होता है। तीसरा, अर्थशास्त्र ने राजनीति को धर्म से पृथक् करके देखा। चौथा, इसके रचयिता ने भारत को एक सुदृढ़ और केन्द्रीकृत शासन दिया, जिसके सम्बन्ध में पहले के विचारक अनभिज्ञ थे।

कौटिल्य की अमर रचना : अर्थशास्त्र

(THE IMMORTAL WORK OF KAUTILYA : THE ARTHASHASTRA)

अर्थशास्त्र का रचना काल– 'अर्थशास्त्र' कौटिल्य द्वारा लिखी हुई एक पुस्तक है जिसके अन्तर्गत व्यक्त किये गये राजनीतिक विचारों ने आधुनिक भारतीय और पश्चिमी विद्वानों को चकित कर दिया है। अर्थशास्त्र की रचना और रचनाकार के सम्बन्ध में विचारक एकमत नहीं हैं। इस सम्बन्ध में जॉली का मत है कि कौटिल्य का अर्थशास्त्र एक धोखा देने वाली चीज है जिसे कि सम्भवतः तीसरी शताब्दी ईसवी में तैयार किया गया था। अर्थशास्त्र का वास्तविक रचनाकार कोई मन्त्री नहीं था वरन् एक सिद्धान्तशास्त्री था। कौटिल्य नाम झूठा है, क्योंकि परम्परागत स्रोतों में उसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। मेगस्थनीज ने कहीं भी उसके नाम का उल्लेख नहीं किया है। इसी प्रकार

पातंजलि ने अपने 'महाभाष्य' में चन्द्रगुप्त एवं अन्य मौर्यों का उल्लेख किया है, किन्तु कौटिल्य के सम्बन्ध में वे चुप हैं। मि. जॉली के अतिरिक्त डी. आर. भण्डारकर, ए. बी. कीथ, विण्टरनिट्ज़ आदि विद्वानों का मत है कि पुस्तक चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन के काफी पश्चात् ईसाई युग की प्रारम्भिक शताब्दियों में लिखी गयी।

परन्तु डॉ. शामाशास्त्री, गनपति शास्त्री, एन. एन. ला, स्मिथ तथा जायसवाल आदि विद्वान् उपर्युक्त मत से सहमत नहीं हैं। उनका मत है कि अर्थशास्त्र का रचनाकाल चन्द्रगुप्त मौर्य का शासन काल ही है। अर्थशास्त्र वही ग्रन्थ है जिसकी रचना चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रधानमन्त्री कौटिल्य ने मौर्य राजाओं के पथ-प्रदर्शन के लिए की थी।

अर्थशास्त्र : राजनीतिशास्त्र की रचना– यह एक विचारणीय प्रश्न है कि कौटिल्य ने इस ग्रन्थ का नाम राजनीतिशास्त्र न रखकर 'अर्थशास्त्र' क्यों रखा ? कौटिल्य ने अर्थशास्त्र के प्रथम अध्याय में यह स्पष्ट कर दिया है कि वे दण्ड का विवेचन कर रहे हैं। दण्ड-नीति शब्द प्राचीन काल से भारत में राजनीति से सम्बन्धित विद्या के लिए प्रयुक्त हुआ है। शुक्र ने राजनीति विद्या को दण्ड-नीति की संज्ञा दी है। कौटिल्य ने अपने ग्रन्थ का नामकरण करने का स्पष्टीकरण किया है। उनका कहना है कि 'मनुष्यों की जीविका को अर्थ कहते हैं। मनुष्यों से युक्त भूमि को भी अर्थ कहते हैं। इस प्रकार की भूमि को प्राप्त करने और उसकी रक्षा करने वाले उपायों का निरूपण करने वाला शास्त्र अर्थशास्त्र कहलाता है।" शुक्र-नीति में भी अर्थशास्त्र की लगभग यही परिभाषा दी है। संक्षेप में कौटिल्य ने अर्थ और अर्थशास्त्र को व्यापक अर्थ में समझा है। कौटिल्य के शब्दों में, "सम्पूर्ण शास्त्रों का विधिवत् अध्ययन करके और उनके प्रयोगों को अच्छी तरह परीक्षा करके ही राजा के लिए इस शासन विधि की रचना की है।" अतः यह स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र का प्रमुख विषय राजनीति है। प्राचीनकाल में राजनीतिक विषय और आर्थिक विषय एक ही माने जाते थे।

अर्थशास्त्र के राजनीतिक विचार

(POLITICAL IDEAS IN ARTHASHASTRA)

कौटिल्य का अर्थशास्त्र मूलरूप से राजनीति का ग्रन्थ है। इसकी विषय-वस्तु में जिन अन्य बातों को समाहित किया है वे सभी राजनीति से सम्बद्ध होने के कारण इसमें स्थान पा सकीं। अर्थशास्त्र के प्रमुख राजनीतिक विचार निम्नलिखित हैं :

राज्य की उत्पत्ति और स्वरूप

(ORIGIN AND NATURE OF THE STATE)

राज्य की उत्पत्ति– कौटिल्य ने राज्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में सामाजिक समझौते के सिद्धान्त को स्वीकार किया है। एक स्थान पर उन्होंने बताया है कि राज्य से पूर्व समाज में मत्स्य-न्याय का प्रभाव था। जिस तरह से बड़ी मछली छोटी मछली को निगल जाती है उसी तरह समाज के सबल पुरुष निर्बल पुरुषों के विनाश में हमेशा सक्रिय रहा करते थे। इस व्यवस्था से तंग आकर लोगों ने विवस्वान् के पुत्र मनु को अपना राजा बनाया। ये लोग इसे अपनी अन्न की उपज का छठा भाग, व्यापार द्वारा प्राप्त धन का दसवां भाग और सोने की आय का कुछ भाग कर के रूप में देने लगे। मनु को राजा नियुक्त करते समय इन लोगों ने यह स्पष्ट कर दिया था कि 'कर' वे लोग राजा को तभी देंगे, जबकि वह उनके योग-क्षेम की समुचित व्यवस्था करता रहेगा। इस प्रकार राज्य की उत्पत्ति एक सामाजिक समझौते का परिणाम थी।

राज्य का सावयव स्वरूप- कौटिल्य राज्य के सावयवी रूप में विश्वास करते हैं। उनके मतानुसार राज्य की सात प्रकृतियां हैं–स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोष, दण्ड और मित्र। इन प्रकृतियों को कौटिल्य ने राज्य के अवयव कहकर सम्बोधित किया है। इस प्रकार उनके मतानुसार राज्य एक ऐसा सावयवी है जिसकी रचना सात अवयवों से मिलकर होती है।

राज्यों के प्रकार

(TYPES OF STATES)

अर्थशास्त्र के अध्ययन से स्पष्ट है कि कौटिल्य राजतन्त्र का पोषक था और वह समस्त भारत पर एक सशक्त और सम्पन्न राजा का शासन स्थापित करना चाहता था। उसी

की मान्यता है कि राजतन्त्र में राज्यशक्ति कुलीन वर्ग के हाथ में रहती है और उपयुक्त अनुशासन और प्रजा में स्वामिभक्ति की स्थापना की जा सकती है, परन्तु अर्थशास्त्र में अन्य प्रकार के राज्यों का उल्लेख भी मिलता है, क्योंकि उस काल में तथा उससे पूर्व भारत में ऐसे राज्यों का अस्तित्व था। अन्य प्रकार के राज्यों को द्वैराज्य, वैराज्य तथा संघराज्य कहा जाता था।

राज्य का उद्देश्य

(THE OBJECT OF THE STATE)

कौटिल्य द्वारा वर्णित राज्य केवल पुलिस राज्य न था अर्थात् राज्य केवल शान्ति, व्यवस्था और सुरक्षा बनाये रखना ही अपना कार्य नहीं समझता। राज्य का उद्देश्य व्यक्ति को उसके पूर्ण विकास में पूरी तरह से सहायता देना है| अच्छा राज्य स्वस्थ और सुदृढ़ अर्थव्यवस्था पर आधारित होता है। कौटिल्य ने जनपद के गुणों का वर्णन करते हुए समृद्धिशाली जनपद के आवश्यक गुण इस प्रकार बताये हैं-राज्य का भूमि क्षेत्र इतना हो कि वह निवासियों की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके और उनकी शत्रुओं से भी रक्षा कर सके। उसमें देशभक्ति की भावना से प्रेरित व्यक्ति रहते हों.जंगली पशु उसके निवासिया को हानि न पहुंचा सकें, उसमें कृषि योग्य भूमि, चरागाह और वन आदि काफी हों. आवागमन के समुचित साधन हों, विभिन्न प्रकार की आवश्यक वस्तुएं उत्पन्न होती हों और सभी वर्गों के परिश्रमी व्यक्ति रहते हों। कौटिल्य के अनुसार राज्य के कार्यों का क्षेत्र अति विस्तृत होना चाहिए। अच्छे राज्य का आधार सुदृढ़ अर्थव्यवस्था है, जिससे कि उसके निवासी अपने जीवन के लक्ष्यों की प्राप्ति कर सकें।

सप्तांग सिद्धान्त

(SAPTANG THEORY)

प्राचीन भारत में राज्य के सावयव रूप का उल्लेख मिलता है। उस समय के विद्वान् राज्य को एक सजीव प्राणी मानते थे। सप्तांग राज्य की कल्पना प्राचीन भारतीय विचारकों के अनुसार एक जीवित शरीर की कल्पना है जिसके सात अंग होते हैं। ऋग्वेद

में समस्त संसार की कल्पना विराट् पुरुष के रूप में की गयी है और उसके अवयवों के द्वारा सृष्टि के विभिन्न रूपों का बोध कराया गया है। मनु, भीष्म और शुक्र जैसे प्राचीन मनीषियों के द्वारा भी राज्य की कल्पना एक ऐसे जीवित जाग्रत शरीर के रूप में की गयी है जिसके सात अंग होते हैं। शुक्र-नीति में राज्य के इन अंगों को मानव शरीर से तुलना करते हुए कहा गया है, "इस शरीर रूपी राज्य में राजा मूर्धा (सिर) के समान है, अमात्य आंख हैं, सुदृत कान हैं, कोष मुख है, बल मन है, दुर्ग हाथ हैं और राष्ट्र पैर है।" इसी प्रकार कौटिल्य के अनुसार भी राज्य के सातं आवश्यक तत्व हैं। इन्हें वह राज्य की प्रकृति भी कहता है और राज्य के अंग भी। राज्य के सात अंगों के कारण ही उसका राज्य की प्रकृति सम्बन्धी सिद्धान्त 'सप्तांग सिद्धान्त' कहलाता है। कौटिल्य के अनुसार राज्य के निम्न सात अंग हैं-1. स्वामी, 2. अमात्य, 3. जनपद, 4. दुर्ग, 5. कोष, 6. दण्ड, 7. मित्र। राज्य के इन अंगों का वर्णन करते हुए कौटिल्य ने राज्य को 'प्रत्यांग भूत' भी कहा है जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि सम्भवतः राज्य के जीव सिद्धान्त (Organic Theory of the State) का वे समर्थन कर रहे हैं।

राजा

(THE KING)

कौटिल्य ने राज्य रूपी शरीर में राजा को सबसे ऊंचा स्थान प्रदान किया है। उसने राजा की सत्ता को समुदाय के सभी कार्यों की एकमात्र आधारशिला समझा है। उसकी समृद्धि से ही राज्य की समृद्धि सम्भव है। उसके गुणों से राज्य के अन्य तत्व भी प्रभावित होते हैं।

कौटिल्य के अनुसार राजा ही राज्य में सर्वशक्तिमान है। राजनीति की सफलता या असफलता तथा राज्य का भविष्य राजा की शक्ति और नीति पर निर्भर है। यद्यपि कौटिल्य गणतन्त्र और अन्य प्रकार के शासनों से परिचित है. परन्तु चूंकि वह गजतन्त्र को ही सर्वोच्च मानता है इसलिए उसने अर्थशास्त्र की ग्चना केवल गजा के हित के लिए ही की है।

राजा के गण-कौटिल्य ने राजा के आवश्यक गुणों पर बहुत बल दिया है। वह अपने राजा को केवल मत्ता उपयोग करने वाले व्यक्ति के रूप में नहीं देखता। वह उसे गर्पि बनाना चाहता है। उसके अनुसार राजा को कुलीन, धर्म का मर्यादा चाहने वाला, कृतज्ञ, दृढ़निश्चयी, विचारशील, सत्यवादी, वृद्धों के प्रति आदरशील, विवेकपूर्ण, दृग्दर्शी, उत्साही तथा युद्ध में चतुर होना चाहिए।

राजा के लिए शिक्षा–कौटिल्य इस तथ्य से परिचित है कि उपर्युक्त सभी गुणा य युक्त व्यक्ति सरलता से नहीं मिल सकता। उसके अनुसार इनमें से कुछ गुण ना स्वाभाविक होते हैं और कुछ अभ्यास से प्राप्त किये जा सकते हैं। मनुष्य के स्वभाव और चरित्र पर वंश-परम्परा का प्रभाव होता है, किन्तु अभ्यास से उसम कुछ परिवर्तन सम्भव हो सकता है। अभ्यास से प्राप्त गुण अधिक महत्वपूर्ण होते हैं। इसीलिए कौटिल्य ने राजा की शिक्षा पर अत्यधिक बल दिया है। उसके अनुसार, "जिस प्रकार घन लगी हुई लकडी जल्दी नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार जिस राजकुल के राजकुमार शिक्षित नहीं होते वह राजकुल विना किसा युद्ध आदि के स्वयं ही नष्ट हो जाता है।"

राजा की दिनचर्या- राजा अपने न्यायोचित कर्तव्यों का पालन कर, इस दृष्टि से कौटिल्य ने राजा की दिनचर्या भी निर्धारित की है। रात और दिन में उसके सारे समय का पूरा कार्यक्रम कौटिल्य ने दिया है और इसमें इस बात का पूरा ध्यान रखा गया है कि जिसका एक-एक क्षण जनकार्य में लगा हो। भोग-विलास, नाच, रंग आदि के लिए कोई भी समय उसमें नहीं दिया गया है और रात में भी इसके लिए केवल चार घण्टे की ही व्यवस्था की गयी है। कौटिल्य राजा के दिन-रात के कार्यक्रम 24 घण्टे को 16 घड़ियों में वांटता है और रात्रि की पृथक् चर्चा का वर्णन करता है। प्रत्येक घड़ी 1 घण्टे की है।

प्रातः बछडे सहित गाय की परिक्रमा करके राजा फिर अपनी दिनचर्या प्रारम्भ कर दे। इस प्रकार राजा का जीवन एक तपस्वी के समान होना चाहिए। कौटिल्य की विचारधारा को व्यक्त करते हुए भगवानदास केला लिखते हैं, "राजपद का ऐश्वर्य कांटों के मुकट के समान है, जिसे सेवाभाव से ही ग्रहण किया जा सकता है।"

राजा के कर्तव्य- राजा के कर्तव्यों का वर्णन करते हुए कौटिल्य ने लिखा है-"प्रजा के सुख में राजा का सुख है, प्रजा के हित में राजा का हित है। राजा के लिए प्रजा के सुख से भिन्न अपना सुख नहीं है, प्रजा के सुख में ही उसका सुख है।" उसके अनुसार, "राजा और प्रजा में पिता और पुत्र का सम्बन्ध होना चाहिए।" जैसे पिता पुत्र का ध्यान रखता है, वैसे ही राजा के द्वारा प्रजा का ध्यान रखा जाना चाहिए।

क्या कौटिल्य का राजा निरंकुश है?

कौटिल्य राजतन्त्र को ही शासन का एकमात्र स्वाभाविक और श्रेष्ठ प्रकार मानता है और राज्य में सप्त अंगों में राजा को सर्वोच्च स्थिति प्रदान करता है, किन्तु ऐसा होने पर भी कौटिल्य का राजा निरंकुश नहीं है, उस पर कुछ ऐसे प्रतिबन्ध हैं जिनके कारण वह मनमानी नहीं कर सकता। ये प्रतिबन्ध निम्न प्रकार हैं :

राजा की शक्ति पर प्रथम प्रतिबन्ध अनुबन्धवाद का था। कौटिल्य के अनुसार मनुष्य ने राजा की आज्ञाओं के पालन की जो प्रतिज्ञा की उसके बदले में राजा ने अपने प्रजाजन के धन-जन की रक्षा का वचन दिया था। इसका स्वाभाविक निष्कर्ष यह है कि राजा के द्वारा प्रजा के धन-जन को हानि पहुंचाने वाला कोई कार्य नहीं किया जा सकता।

राजा की शक्ति पर दूसरा प्रतिबन्ध धार्मिक नियमों और रीति-रिवाजों का था। राजा के अधिकार धर्म और रीति-रिवाजों से सीमित थे और वह इनका पालन करने के लिए बाध्य था। इस बात की आशंका रहती थी कि राजा द्वारा इन नियमों का उल्लंघन किये जाने पर जनता क्षुब्ध होकर स्वयं ही उसके जावन का अन्त कर दे।

राजा की शक्ति पर तीसरा प्रतिबन्ध मन्त्रिपरिषद् का था। उसके अनुसार राज्य रूपी रथ के दो चक्र राजा और मन्त्रिपरिषद हैं, इसलिए मन्त्रिपरिषद् का अधिकार राजा के बराबर ही है। मन्त्रिपरिषद राजा की शक्ति पर नियन्त्रण रख उसे निरंकुश बनने से रोकती थी।

इन सबके अतिरिक्त कौटिल्य ने राजा की निरंकुशता पर अन्तिम किन्तु एक अत्यन्त प्रभावशाली प्रतिबन्ध राजा के व्यक्तित्व तथा उसे प्रदान की गयी शिक्षा के आधार पर

लगाया है। कौटिल्य ने राजा के लिए अनेक मानसिक और नैतिक गुण आवश्यक बताये हैं और इस प्रकार का सर्वगुणसम्पन्न राजा अपन र से ही निरंकुश नहीं हो सकता।

कृष्ण राव ने ठीक लिखा है कि "कौटिल्य का राजा अत्याचारा सकता, चाहे वह कुछ बातों में स्वेच्छाचारी रहे, क्योंकि वह धर्मशास्त्र और के सुस्थापित नियमों के अधीन रहता है।"

अमात्य या मन्त्रिपरिषद्

(THE COUNCIL OF MINISTERS)

कौटिल्य ने अपने 'अर्थशास्त्र' में राजा के लिए मन्त्रिपरिषद् की आवश्यकता पर बहुत वल दिया है। उसके अनुसार राज्य एक रथ है जैसे रथ एक पहिये से नहीं चल सकता, उसी प्रकार मन्त्रियों की सहायता के बिना अकेला राजा राज्य का संचालन नहीं कर सकता। अतः राजा के लिए यह उचित है कि वह योग्य मन्त्री रखे और उनके परामर्श पर उचित ध्यान दे। कौटिल्य ने सद्भावना पर बल देते हुए यहां तक कहा कि "समस्त कार्यों का प्रारम्भ सद् विषयक मन्त्रणा कर लेने के उपरान्त ही होना चाहिए।" उसका विचार है कि मन्त्रियों के साथ मन्त्रणा किये विना राजा का कार्य नहीं चल सकता।

मन्त्र गोपन– मन्त्रणा के सम्बन्ध में कौटिल्य ने मन्त्रणा को गुप्त रखना वहुत अधिक आवश्यक बताया है। कौटिल्य का कथन है कि मन्त्र का गुप्त न रहना राजा और मन्त्रिपरिषद् के सदस्यों दोनों के कल्याण के लिए घातक होता है। उन्होंने कछुए का उदाहरण देते हुए कहा है कि जिस प्रकार कछुआ अपने अंगों को समेटे रहता है और केवल आवश्यकता पड़ने पर उन्हें बाहर करता है, उसी प्रकार राजा को मन्त्र का गोपन अथवा प्रकाशन करना चाहिए।

मन्त्रिपरिषद् का गठन- मन्त्रिपरिषद् के गठन के सम्बन्ध में कौटिल्य ने सर्वाधिक बल मन्त्रियों की योग्यता पर दिया है। इस सम्बन्ध में उसने वहुत कठोर और उच्च स्तर निर्धारित किये हैं। उसका विचार है कि सभी प्रकार की क्षमताओं और योग्यताओं से युक्त निष्कलंक व्यक्तियों को ही मन्त्रिपरिषद् में स्थान दिया जाना चाहिए। डॉ.

बेनीप्रसाद के शब्दों में, "कौटिल्य के अनुसार निष्कलंक व्यक्तिगत जीवन, बौद्धिक चातुर्य, उचित निर्णय, कर्तव्य की उच्च भावना और लोकप्रियता मन्त्रिपरिषद् के लिए आवश्यक योग्यताएं होनी चाहिए।" कौटिल्य का विचार है कि किसी व्यक्ति को सहसा ही मन्त्रिपरिषद् का सदस्य नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए।

मन्त्रिपरिषद् द्वारा राजा पर नियन्त्रण- कौटिल्य ने अपने सप्तांग सिद्धान्त में मन्त्रिपरिषद् सहित राज्य के दूसरे 6 अंगों की तुलना में राजा को अधिक महत्वपूर्ण माना है। राजा और मन्त्रिपरिषद् के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में उनका विचार है कि राजा सामान्यतया मन्त्रिपरिषद् के बहुमत के आधार पर कार्य करे, किन्तु मन्त्रिपरिषद् की मन्त्रणा कार्य-सिद्धिकर प्रतीत न होने पर राजा अपनी इच्छानुसार कार्य कर सकता है, किन्तु इसके साथ ही कौटिल्य इस बात को नहीं भूला है कि एक दुराचारी, भोग-विलास में लिप्त, अयोग्य या अति धार्मिकता के कारण राज्य के हितों की चिन्ता न करने वाले राजा पर मन्त्रिपरिषद् के नियन्त्रण की आवश्यकता होती है।

प्रशासनिक व्यवस्था

(ADMINISTRATIVE SYSTEM)

राजा तथा मन्त्रिपरिषद् के अतिरिक्त प्रशासनिक व्यवस्था के व्यावहारिक संचालन के सम्बन्ध में भी कौटिल्य ने स्पष्ट और निश्चित विचार व्यक्त किया है। उसके ये विचार उनकी व्यावहारिक प्रशासन सम्बन्धी सूझ-बूझ के परिचायक हैं। कौटिल्य का गज्य बहुत कुछ सीमा तक एक कल्याणकारी राज्य है और उसने प्रशासनिक व्यवस्था का विशद विवेचन किया है। सके अनुसार सम्पूर्ण प्रशासन को राजस्व, सेना, वाणिज्य, व्यापार, कृषि, वन और शिल्पकला आदि विभिन्न विभागों में विभक्त किया जाना चाहिए और प्रत्येक विभाग का एक अध्यक्ष होना चाहिए। राज्य के प्रमुख मन्त्रियों, अमात्यों, विभागाध्यक्षों एवं अधिकारी वर्गों को कौटिल्य अष्टादश (18) तीर्थों की संज्ञा देते हैं। ये तीर्थ मन्त्री, पुरोहित, सेनापति, युवराज, द्वावारिक, अन्तर्वेशिक (अंगरक्षक तथा अन्तःपुर का रक्षक), समाहर्बी (Collector General), सन्निधात्री (मुख्य कोषाध्यक्ष), प्रवेष्ट्री (आयुक्त), नायक (नगर रक्षक), पौर (नगर का प्रधान), व्यावहारिक

(दीवानी न्यायाधिकारी), कार्यान्तिक (कारखानों का अध्यक्ष), मन्त्रिपरिषदको अध्यक्ष, विभागाध्यक्ष, दण्डपाल (सेना विभाग का अधिकारी) तथा दुर्गपाल की थे। कौटिल्य ने अनेक प्रशासनिक विभागों के अध्यक्षों का उल्लेख करत हो उनके कर्तव्यों की विशद् व्याख्या की है।

कौटिल्य के अनुसार प्रशासनिक कार्य अत्यन्त योग्य अधिकारियों द्वारा किया जाना चाहिए और राजा द्वारा इन अधिकारियों के कार्यों तथा चरित्र पर कड़ी निगरानी रखी जानी चाहिए।

मण्डल सिद्धान्त

(MANDAL SYSTEM)

कौटिल्य ने अपने मण्डल सिद्धान्त में अनेक राज्यों के समूह या मण्डल में विद्यमान राज्यों द्वारा एक-दूसरे के प्रति व्यवहार में लायी जाने वाली नीति का वर्णन किया है। इस सिद्धान्त में मण्डल केन्द्र ऐसा राजा होता है जो पड़ोसी .राज्यों को जीतकर अपने में मिलाने के लिए प्रयत्नशील है। कौटिल्य ने ऐसे राजा को 'विजिगीषु राजा' (विजय की इच्छा रखने वाला राजा) कहा है। उसकी मान्यता है कि एक राजा का पड़ोसी राज्य स्वाभाविक रूप से उसका शत्रु राज्य होता है। विजिगीषु राजा के राज्य की सीमा से लगा हुआ जो राज्य होगा वह, अरि (शत्रु) राज्य होता है। विजिगीषु के राज्य से अलग, किन्तु उसके पड़ोसी राज्य से मिला हुआ राज्य विजिगीषु का मित्र होता है और मित्र राज्य से मिला हुआ राज्य अरि मित्र होता है। कहने का आशय यह है कि अपने निकटतम पड़ोसी राज्य का राजा शत्रु उसके आगे का मित्र और उससे आगे का अरि मित्र, इसी प्रकार से क्रम चलता है। ये पांच राज्य तो विजिगीषु के सामने वाली या आगे की दिशा में होते हैं। इसी प्रकार कुछ राज्य उससे पीछे की दिशा में होते हैं। विजिगीषु के पीछे पाणिग्राह (पीछे का शत्रु) आक्रान्दा (पीठ का मित्र), पाणिग्राहासार (पाणिग्राह का मित्र) और आक्रान्दासार (आक्रान्दासार का मित्र) चार राजा होते हैं। पाणिग्राह पड़ोसी होने के कारण ही विजिगीषु का शत्रु होता है। इन दस प्रकार से राज्यों के अतिरिक्त दो अन्य प्रकार के भी राज्य हैं–मध्यम तथा उदासीन। मध्यम ऐसा राज्य

है जिसका प्रदेश विजिगीषु तथा अरि राज्य दोनों की सीमा से लगा हुआ है। मध्यम राज्य दोनों की, चाहे वे परस्पर मित्र हों या शत्रु हों, सहायता करने में समर्थ होता है और आवश्यक होने पर दोनों का अलग-अलग मुकाबला कर सकता है। उदासीन राजा का प्रदेश विजिगीषु, अरि तथा मध्यम इन तीनों की सीमाओं से परे होता है। वह बहुत प्रवल होता है, उपर्युक्त तीनों के परस्पर मिले होने की दशा में वह उनकी सहायता कर सकता है, उनके परस्पर न मिले होने की दशा में वह प्रत्येक का मुकाबला कर सकता है। इस प्रकार 12 राज्यों का यह समूह राज्य मण्डल कहलाता है।